Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Research Paper

प्रयोगवादी काव्य चिन्तन: प्रकृति और परिवेश

प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी

प्रोफेसर, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा तथा पत्रकारिता विभाग

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, भारत

Corresponding Author: * प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20461258

सारांश

यह शोध-पत्र छायावादोत्तर हिन्दी काव्य-चिन्तन में प्रयोगवादी काव्यदृष्टि की प्रकृति एवं परिवेश का विश्लेषण करता है, जिसमें अज्ञेय के काव्य-चिन्तन को केन्द्रीय आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। यह आलेख स्थापित करता है कि अज्ञेय ने छायावादी काव्य-परम्परा के पश्चात् हिन्दी काव्य-चिन्तन को एक सर्वथा नवीन दिशा प्रदान की, जिसमें पाश्चात्य मनोविश्लेषण-शास्त्र — विशेषतः फ्रायड, एडलर एवं युंग — तथा इलियट के सृजन-सिद्धान्त का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शोध-पत्र में यह विवेचन किया गया है कि अज्ञेय की दृष्टि में काव्य-प्रेरणा का मूल स्रोत 'अपर्याप्तता की भावना' के विरुद्ध व्यक्ति का विद्रोह है, जो कला को एक प्रकार का आत्मदान एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। आलेख में सर्जन-प्रक्रिया के अन्तर्गत 'तनाव', 'निर्वैयक्तिकता', 'अनुभव की अद्वितीयता', 'अर्थ की साधारणता' तथा 'कवि-मानस की ग्रहणशीलता' जैसे तत्त्वों का विस्तृत परीक्षण किया गया है। साधारणीकरण एवं सम्प्रेषण के प्रश्न पर अज्ञेय की मौलिक स्थापनाओं को भारतीय रस-सिद्धान्त एवं पाश्चात्य समीक्षा-परम्परा के सन्दर्भ में रखकर विश्लेषित किया गया है। काव्य-भाषा सम्बन्धी विवेचन में अज्ञेय के उस चिन्तन को उजागर किया गया है जिसमें वे शब्द, मौन, ध्वन्यर्थ एवं रागात्मक सम्बन्ध को काव्य-रचना का अनिवार्य आधार मानते हैं। निष्कर्षतः यह शोध-पत्र यह सिद्ध करता है कि अज्ञेय का प्रयोगवादी काव्य-चिन्तन न तो विशुद्ध कलावाद है और न ही वैयक्तिकता का निषेध, बल्कि वह 'व्यक्ति-सत्य' को 'समष्टि-सत्य' में रूपान्तरित करने की एक सुचिन्तित एवं मौलिक काव्य-दृष्टि है।

Manuscript Info.

- ✓ **ISSN No:** 2584- 184X
- ✓ **Received:** 10-09-2025
- ✓ **Accepted:** 25-10-2025
- ✓ **Published:** 30-11-2025
- ✓ **MRR:3(11):**2025;116-124
- ✓ **©2025, All Rights Reserved.**
- ✓ **Peer Review Process:** Yes
- ✓ **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite this Article

प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. प्रयोगवादी काव्य चिन्तन: प्रकृति और परिवेश. Indian J Mod Res Rev. 2025;3(11):116-124.

मुख्य शब्द : प्रयोगवाद, अज्ञेय, सर्जन-प्रक्रिया, निर्वैयक्तिकता, साधारणीकरण, सम्प्रेषणीयता, काव्य-भाषा, मनोविश्लेषण, तनाव-सिद्धान्त, छायावादोत्तर काव्य-चिन्तन

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1. प्रस्तावना

छायावादोत्तर काव्य चिन्तन में प्रयोगवादी काव्यदृष्टि का विशेष महत्त्व है, जिसके उदय एवं विकास में अज्ञेय का क्रान्तिकारी अवदान है, जिन्होंने छायावादी काव्य चिन्तन के बाद हिन्दी काव्यचिन्तन की विकासयात्रा को एक नयी दिशा दिया, इस दिशा की दशा को लेकर आरोप-प्रत्यारोप किए जा सकते हैं, किन्तु अज्ञेय की भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । उनके काव्य चिन्तन का सक्रिय रूप सर्वाधिक सशक्त रूप में तारसप्तक की भूमिका में दिखाई देता है, जहाँ से न केवल चिन्तन बल्कि हिन्दी कविता की पूरी यात्रा एक नये मोड पर खड़ी दिखाई देती है । अज्ञेय की काव्यविषयक धारणाएं 'त्रिशंक', 'आत्मनेपद', 'हिन्दी साहित्य : आधुनिक परिदृश्य', 'आलवाल', 'लिखि कागद कोरे', भवन्ती और 'अन्तरा' में व्यक्त हुई हैं । उनके द्वारा संपादित सप्तकों की भूमिकाओं में एवं उनके द्वारा दिये गये साक्षात्कार में भी उनका काव्य विषयक चिन्तन दिखाई देता हैं, जिसमें उन्होंने सर्जन प्रक्रिया, सर्जक की स्थिति, गृहीता की आवश्यकता, सर्जक एवं ग्रहीता के बीच के सम्बन्ध, काव्य की सफलता असफलता एवं स्वरूप, कवि की शक्ति, छन्द एवं लय की प्रासंगिकता, काव्यगत सत्य आदि पर विचार किया । उनके काव्य चिन्तन में एक ओर उन पर इलियट का प्रभाव दिखाई देता है, तो वहीं फ्रायड तथा एडलर का भी । कृष्णदत्त पालीवाल ने संकेत किया है कि इलियट के सृजन सिद्धान्त से प्रभावित होने का प्रमाण शेखर : एक जीवनी' की भूमिका है, जिसमें अज्ञेय का एक वाक्य है - 'वेदना में एक शक्ति है जो दृष्टि देती है, जो यातना में है. वह द्रष्टा हो सकता है ।' इलियट ने भी लिखा है कि, 'भोगने वाले प्राणी और सृजन करने वाले कलाकार में एक अन्तर सदा रहता है और जितना बड़ा कलाकार होता है, उतना ही भारी यह अन्तर होता है ।"1 फ्रायड के काम सिद्धान्त एवं एडलर के मनोविश्लेषणशास्त्र से प्रभावित मान्यताओं का प्रमाण अज्ञेय की इन मान्यताओं में प्रकट है -

- 'आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है । उसके जीवन का एक पक्ष है, उसकी सामाजिक रूढ़ि की लम्बी परम्परा, जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ विकसित नहीं हुई और दूसरा पक्ष है स्थिति परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ रूढ़ि का विकास असम्भव है । इस विपर्यास का परिणाम है कि आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुंठित हैं । उसकी सौन्दर्य-चेतना भी उससे आक्रान्त है । उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं । प्रतीक द्वारा कभी-कभी वास्तविक अभिप्राय अनावृत्त हो जाता है जिससे एक दूसरे प्रकार की वर्जनाओं का पुंज खड़ा होता है और उनके साथ ही उनके प्रति विद्रोह का स्वर जागता है ।'2
- 'कवि के लिए इस परिस्थिति में और भी कठिनाइयाँ हैं । एक मार्ग यौन स्वप्न सृष्टि का दिवास्वप्नों का है, उसे वह नहीं अपनाना चाहता । फिर वह क्या करे ? यथार्थ दर्शन केवल कुण्ठा उत्पन्न करता है । वास्तव की बीभत्सता की कसौटी पर चाँदनी खोटी दीखती है । कवि अपनी काव्य-परम्परा का मूल्यांकन करता है और चारणकाल से लेकर छायावाद तक की कविता को तात्कालिक परिस्थिति अथवा जीवन प्रणाली पर घटित करके समझ लेता है, किन्तु फिर भी आज के जीवन के दबाव की अभिव्यंजना का मार्ग उसे नहीं दीखता । क्योंकि आज उसकी अनुभूतियाँ तीव्रतर हैं तो वर्जनाएँ भी कठोरतर हैं ।'3
- 'और प्रेम? एक थका मांदा पक्षी, जो साँझ घिरती देखकर आशंका से भी भरता है और साहस संचित करके लड़ता भी जा रहा है । निराशा और कुण्ठा से धैर्यपूर्वक लड़ता हुआ।4
- इतना ही नहीं अज्ञेय युंग के 'सामूहिक अवचेतन सिद्धान्त' से भी प्रभावित हैं । आधुनिक साहित्य : एक परिदृश्य में अज्ञेय का कथन है, 'काव्य वास्तविक जीवन की अनुभूतियों के रेचन का मार्गभर नहीं है । रेचन (केथार्सिस) की बात अप्रासंगिक हो जाती है : कला आनन्द देती है तो अनुभूतियों से छुटकारा दिला कर नहीं, बल्कि उसके मूल स्रोत की पहचान करा कर । ... हर किसी में अर्थात् हर सहृदय में यह सहज क्षमता अथवा योग्यता है कि वह काव्यानुभूति में प्रवेश पा सके, भले ही उसने उस अनुभूति के यथार्थ जीवन के पर्याय का अनुभव या 'भाग' किया हो या नहीं । इस सहजात सहजात योग्यता के द्वारा व्यक्ति सामूहिक अथवा संचित अनुभवों के उस भण्डार तक तक पहुँच जाता है जिससे होता हुआ वह उन काव्यानुभूतियों में प्रवेश पा सकता है जो अब तक उसके अनुभव की परिधि में नहीं आयी थीं । ... युग की सामूहिक अवचेतन की परिकल्पना भी उसे समझने में सहायक हो सकती है ।"5

काव्य का स्वभाव, प्रेरणा एवं रचना प्रक्रिया

- इस विषय पर अज्ञेय जी एडलर के के प्रभुत्व कामना तथा क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त से प्रभावित दिखाई देते हैं । अज्ञेय की मान्यता है कि-
- 'व्यक्ति का सृजन यदि समाज द्वारा अस्वीकृति पाता है तो ऐसी स्थिति में विद्रोह जन्म लेता है । यदि व्यक्ति प्रतिभावान है तो हासोन्मुखी परिस्थितियों से जूझकर विजय प्राप्त करता है। कभी-कभार वह अतीत में जाकर स्वीकृति प्राप्त करता है । व्यक्ति परिस्थितियों की अनुकूलता, उनके संस्कार से अपना स्वरूप निर्मित करता है । व्यक्ति, वस्तु और व्यक्तित्व में टकराव होता है । व्यक्तित्व का अंश स्वीकृति के लिए विद्रोह करता है ।' 6

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

- 'कला सामाजिक अनुपयोगिता के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है।'7
- 'पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा, पहली कला चेष्टा ऐसी ही विद्रोह रही होती, फिर चाहे वह रेखाओं द्वारा प्रकट हुआ हो, चाहे वाणी द्वारा, चाहे वस्तु द्वारा, चाहे मिट्टी के लोदों द्वारा ।'8
- 'समाज के साधारण जीवन में अपना स्थान न पाकर तो वह प्रेरित होता है कि वह स्थान बनाये, अतएव पुरानी लीकों पर चलने की असामर्थ्य ही नई लीकें बनाने की सामर्थ्य को प्रोत्साहन देती है । दूसरे, यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि लेखकों में - बल्कि साधारणतया कलाकार समुदाय में, जो एक विशेष प्रकार की की असहिष्णुता, अहम्मन्यता, एक दुर्निवीत श्रेष्ठता की भावना दीखा करती है, वह भी एक आत्मरक्षा का कवच है - किसी मौलिक अपूर्णता या अपर्याप्तता के ज्ञान को अपने अहं के आगे से हटा देने की चेष्टा है । जो पाठक या लेखक आधुनिक मनोविज्ञान की स्थापनाओं से परिचित हैं, वे जानेंगे कि इस प्रकार की क्षतिपूरक क्रियाएँ मानव जीवन में कितना महत्त्व रखती हैं।9
- 'अंततः कन्दरावासी कलाकार और आधुनिक कलाकार में कोई विशेष भेद नहीं रहता, दोनों में ही एक अपर्याप्तता चीत्कार करती है । यह अनिवार्य नहीं है कि उसके ज्ञान से सदा कला वस्तु ही उत्पन्न हो, वह परास्त भी कर सकती है, परन्तु उससे हमारी यह स्थापना झूठी नहीं होती कि प्रत्येक कला चेष्टा की जड़ में एक अपर्याप्तता की भावना काम कर रही होती है ।'10

इसी अर्थ में अज्ञेय की दृष्टि में कला 'सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न या अपर्याप्तता के विरूद्ध विद्रोह है।'11 श्री शिवनाथ का कथन सत्य है कि एडलर और अज्ञेय की बात में अन्तर केवल इतना है कि 'हीनता' के स्थान पर 'अनुपयोगिता' एवं 'अपर्याप्तता' का प्रयोग करते हैं।12 कला एवं साहित्य अज्ञेय जी की दृष्टि में अपर्याप्तता की भावना के प्रति व्यक्ति का विद्रोह होने के कारण एक प्रकार का आत्मदान है । अज्ञेय के अनुसार - 'कला सम्पूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा है।'13 इसीलिए अज्ञेय जी के अनुसार कला में नैतिक चेष्टा (एथिकल वैल्यू) रहती है । इसी अर्थ में 'कला' 'कला के लिए नहीं है । अज्ञेय जी के शब्द हैं, "कला उद्देश्य से अन्तः सलिल है।"14 इलियट के यहाँ भी आत्मदान का तत्त्व है जो कवि व्यक्तित्व के निर्वैयक्तिक होने की प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, 'जो घटित होता है - वह कलाकार का निरन्तर आत्मसमर्पण है, क्योंकि उस क्षण उसका लक्ष्य अपेक्षाकृत कुछ अधिक मूल्यवान होता है । निरन्तर विलय में ही कलाकार की प्रगति निहित है।'15 तुलसीदास जी के 'स्वान्तः सुखाय' में भी समाजाकिता का निषेध नहीं है, अज्ञेय के यहाँ भी व्यक्तित्व सामाजिकता का विपक्ष नहीं है, इसका सबसे प्रबल प्रमाण यही है कि वे कलावादियों की तरह 'कला कला के लिए' सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते । अज्ञेय का कथन है, "यदि 'कला कला के लिए' का अर्थ है - सौन्दर्य की खोज किन्हीं विशेष सिद्धान्तों के द्वारा एक रासायनिक सौन्दर्य की उपलब्धि, तब वह कला और कलाकार को कोई सुख नहीं दे सकती - न आत्मदान का, न आत्मबोध का, वह कलावन्ध्या है।"16 इसीलिए अज्ञेय जी मानते हैं कि कला में कलाकार का दायित्व दोहरा होता है और इसी में सार्थक कलाकार की सिद्धि भी है -

१. कला में समाज तथा उसकी विशालता का धारण।
२. समाज के अन्तर्गत समस्त जगत के कल्याण की चिन्ता।

एडलर का मनोविश्लेषणशास्त्र भी कला की सामाजिक उपयोगिता को स्वीकृति देता है और अज्ञेय भी । अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिगत चेतना एवं सामाजिकता एक दूसरी की पूरक हैं । अज्ञेय तो यहाँ तक मानते हैं कि साहित्य की प्रेरणा देने वाली शक्ति साहित्यकार की आन्तरिक विवशता है, 'साहित्यकार यद्यपि किसी एक दिशा में जाता है अवश्य, तथापि वह दशा वाह्य आदेशों द्वारा निश्चित नहीं होती । कवि की व्यक्तिगत परिस्थिति उसकी आन्तरिक और बाह्य परिस्थिति से उत्पन्न व्यक्तिगत विवशता उसे निश्चित करती है।"17 अज्ञेय की यह कविता इस भाव को बहुत ही सार्थक ढंग से व्यक्त करती है –

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इस पंक्ति को भी दे दो ।

क्योंकि अज्ञेय का दृढ़ विश्वास है कि, 'कवि का काव्य ही उसकी आत्मा का सत्य है और यह सत्य 'व्यक्ति सत्य' न होकर 'व्यापक सत्य' है। जितना ही वह इस 'व्यापक सत्य' को विशाल बनाता है, कवि बड़ा बनता है । इसी अर्थ में 'अपरि काव्य संसारे कविरेव प्रजापति' की चर्चा होती है । इसी बात को 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' के सम्बन्ध से कहा गया है तथा शब्द को ब्रह्म तथा वाक् शक्ति को संसार की उत्पत्ति का कारण।'18 इसीलिए अज्ञेय का मानना है। कि 'कला सम्पूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति को अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा है ।19 इसी अर्थ में सृजन के लिए अनुभूति की प्रामाणिकता या प्रामाणिता की अनुभूति आवश्यक है । इसीलिए आत्मालोचन, आत्माभिव्यक्ति, आत्मान्वेषण भी काव्य की सृजन प्रेरणा का जरूरी पहलू है, जो एक प्रकार के तनाव की सृष्टि करता है और अज्ञेय के यहाँ यह तनाव ही काव्य सृजन के लिए प्रेरित करता है । अज्ञेय के **निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं –**

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

- 'मेरी शक्ति उस तनाव में है । वास्तव में मेरी दुनिया ही उस तनाव में है क्योंकि उसी में से मैं सृष्टि करता हूँ । हो सकता है कि तुम्हारी सृष्टि से पहले तुम्हारी स्थिति भी तुलनीय रही हो - जब असत् और सत् में, केआस और कास्मास में, तनाव रहा हो, पर उसके बाद से शायद नहीं ।'20
- 'इन दो उत्तरों के बीच जो तनाव रहता है, वही मुझे लिखने की प्रेरणा देता है शायद कला मात्र में जो शक्ति सृजन प्रेरणा बनती है - वह यही तनाव है, जाने हुए उत्तर और दिए जा सकने वाले उत्तर के बीच का तनाव । लेखन इस तनाव का हल या उसे हल करने का प्रयत्न है।'21

एलन टेट ने इसी तनाव को 'टेंशन' के रूप में स्वीकार कर काव्य का मुख्य प्रेरक तत्व माना, अज्ञेय तो 'प्रतिभा' को भी 'आन्तरिक तनाव की स्थिति' मानते हैं । आनन्द प्रकाश दीक्षित का कथन है, 'तनाव से उनका अभिप्राय उस स्थिति से है, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की सम-विषम अनुभूतियाँ, शब्द, विचार और चित्र रचनाकार के मानस में उमड़ते रहते हैं और रचनाकार इनके बीच एक चमत्कारिक योग घटित कर पाता है कि उसका उन्मेष ही कला या काव्य का रूप धारण कर लेता है।22 अज्ञेय काव्य प्रेरणा के प्रश्न पर एलन टेट के साथ ही इलियट से भी प्रभावित हैं । उन्होंने त्रिशंक में लिखा है, 'वास्तव में कलाकार का मन एक भंडार है जिसमें अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ, शब्द, विचार, चित्र इकट्ठे होते रहते हैं, उस क्षण की प्रतीक्षा में जबकि कवि प्रतिभा के ताप से एक नया रसायन, एक चमत्कारिक योग नहीं उत्पन्न हो जाएगा।' चमत्कारिक योग की तीव्रता का उन्मेष ही काव्य एवं कला का रूप ग्रहण करता है । 'विचार, सूझ, आइडिया कभी नहीं मरता' और 'सभी विचार ऐसे नहीं होते कि उन्हें सभ्य या पालतू बनाया जा सके ।' अतएव अज्ञेय की दृष्टि में सर्जक उन क्षणों की प्रतीक्षा करता है जब 'अपने आप आएगा ऐसा विचार जो मेरी पकड़ के लिए होगा, ऐसा विचार जिसमें में सबका सब अंट जाऊगा, कह दिया जा सकूंगा - मेरी कामधेनु जो मुझे मेरा सम्पूर्ण मेरापन वरदान - सा दे देगी, मुझे देगी, मुझे बाँटने लुटाने देगी और जिसके बाद भी मैं सम्पूर्ण बच जाऊँगा और बचा रहूँगा।23 भारतीय संस्कृत आचार्यों ने भी रस की परिणति 'चमत्कार-प्राणता' में स्वीकार किया है।

पण्डितराज जगन्नाथ भी 'लोकोत्तर' का प्रयोग 'चमत्कार प्राणता' के अर्थ में किया है। अज्ञेय का विचार है कि काव्य प्रक्रिया में निरन्तर प्रयुक्त होने वाले शब्द जब 'चमत्कार' खो देते हैं, तो काव्य भाषा नितान्त अभिधेय होकर गद्य की भाषा में परिणत हो जाता है क्योंकि 'वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।' अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में लिखा है कि, 'जब चमत्कारिक अर्थ भर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है । उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता । कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः राग का संचार हो, पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो।'24 और यह तभी सम्भव है जब 'कवि नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर नये सत्यों का रूप दे, उन नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे ।'25

डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित का कहना सत्य है कि अज्ञेय रचना प्रक्रिया को एक 'यंत्रणा भरी', कष्टमय प्रक्रिया मानते हैं, क्योंकि 'रचना की प्रेरणा जिन आभ्यन्तर तनावों, दबावों, दमन उन्नयन की क्रियाओं से मिलती है, वे जिन गुत्थियों के साथ अभिन्न रूप में संग्रथित होती हैं, उन्हें कृतिकार नहीं देख सकता ।' और इतना ही नहीं 'कोई प्रामाणिक बात नहीं कह सकता।'26 इसीलिए अज्ञेय कवि को 'आभ्यन्तर ताप से त्रस्त' मानते हैं और कवि को 'अग्नि स्नात कवि पुरुष' एवं 'हविष्यवाही अग्नि पुरुष' कहते हैं एवं उसे 'मानव से अधिक सामर्थ्यवान पर ब्रह्म से नीचे' स्वीकार करते हैं ।

अज्ञेय का 'अन्तरा' में कथन है -

- 'सर्जक प्रतिभा निरन्तर चयन भी करती रहती है: अनुभूतियों- अनुभवों का, विचारों-कल्पनाओं का, शब्दों ध्वनियों अर्थो अभिप्रायों का, जिन सबको कूट-पीस छान-सान, जला-पका कर वह कभी कला-रूप की सृष्टि करेगी ! एक दूसरे स्तर पर - कितना सार्थक उभयार्थवाची शब्द है 'चिति' ! – यह विचिन्वन ही अग्नि-चयन भी है, वही यज्ञ हुताशन जिसमें स्रष्टा स्वयं निरंतर आहुति-सा स्वाहा होता रहता है ? ऐसी अग्नि स्नात कवि और पुरुष ही वह हविष्य बांट सकता है जो इष्ट-पूर्तियों का प्रतीक हो ।'27
- 'सिसृक्षा एक ऐसी सत्ता है जो स्रष्टा को भी त्रस्त किए रहती है । वैदिक कवि आदि-स्रष्टा के बारे में तो कह गया कि 'उसने अपने भीतर के ताप से ही रूप रच रच कर निकाल फेंके, पर स्वयं कवि किस आभ्यन्तर ताप से त्रस्त होकर रूपाकारों की सृष्टि करता है? उसे ब्रह्म कह दिया जा सकता है, पर उससे बात कुछ स्पष्टतर हो जाती हो ऐसी नहीं है। और हर कवि हर रचना के बारे में यह दावा भी बिना दंभ के नहीं कर सकता कि इसमें ब्रह्म बोल रहा है । तथापि यह कहना सच होगा - दावा न होकर आत्म-स्वीकार ही होगा - कि कवि के भीतर कवि से बड़ी कोई शक्ति कारगर होती है । यह सत्ता क्या है ? यह जिज्ञासा और विस्मय कवि को भी होते हैं, होते रहते हैं। मानव से अधिक सामर्थ्यवान् परब्रह्म से नीचे, दिव्य किन्तु ईश्वर से कम सत्ता को ही 'यज्ञ' कहा गया है।'28

किन्तु यह प्रतिभा से ही सम्भव है, जो 'आत्म त्याग' अहं के विलयन' से निर्मित होती है एवं इस सृजनधर्मी प्रतिभा के लिए 'अनुभव की अद्वितीयता' और 'अर्थ की साधारणता आवश्यक है

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

। अज्ञेय के अनुसार, 'अनुभव की अद्वितीयता और अर्थ की साधारणता-प्रतिभा के ये दो इष्ट हैं या कहा जाए कि इन दो ध्येयों का योग ही इष्ट है । जिस प्रक्रिया से यह योग सिद्ध होता है, वही रचना प्रक्रिया है।29 लेकिन अज्ञेय जी की दृष्टि में प्रतिभा के कार्य-व्यापार के लिए उसकी स्वायत्तता एवं रचनाकार की मानसिक स्वाधीनता अत्यन्त आवश्यक है।

इसीलिए कवि की प्रतिभा की दो कोटियाँ प्रौद्ध एवं कच्ची प्रतिभा के रूप में देखते हैं । अज्ञेय की दृष्टि में, "प्रौढ़" और 'कच्ची' कवि प्रतिभा का अन्तर कवियों के 'व्यक्तित्व' के अनुपात में निहित नहीं है, इसमें नहीं है कि किसका 'व्यक्तित्व' कितना बड़ा अथवा कितना आकर्षक है, कौन अधिक रोचक है, अथवा किसके पास अधिक 'संदेश' है । वास्तविक अन्तर की पहचान यह है कि कौन-सा कवि-मानस किन्हीं विशेष अथवा परस्पर भिन्न, 'उड़ती हुई' अनुभूतियों के मिश्रण और संयोग और चिरनूतन संगम के लिए अधिक परिष्कृत और ग्रहणशील माध्यम है।"30 और "कलाकार जितना ही बड़ा होगा, उतना ही व्यक्ति जीवन और रचनाशील मन का यह अलगाव भी आत्यन्तिक होगा । उतना ही रचना करने वाला कवि-मानस अनुभव करने वाले मानव से दूर और पृथक् होगा, उतना ही चमत्कारपूर्ण उन अनुभूतियों ओर भावों का संगम होगा जो कविता-रूपी प्रतिभा की मिट्टी है - फिर चाहे ये अनुभूतियां ओर भाव कवि के निजी अनुभव के, व्यक्तिगत जीवन के फल क्यों न हों । यों कहें कि जितना ही महान् कलाकार होगा उतना ही उसकी माध्यमिकता परिष्कृत होगी।'31

समग्रतः प्रौढ़ कवित्त्व के लिए अज्ञेय तीन बातें आवश्यक मानते हैं-

१. अनुभूतियों के मिश्रण, संयोग और चिरनूतन संगम
२. कवि मानस की परिष्कृति
३. कवि मानस की ग्रहणशीलता

तो रचना प्रक्रिया के लिए तीन तत्त्व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है-

१. अनुभव की अद्वितीयता और अर्थ की साधारणता
२. स्वायत्तता एवं रचनाकार की मानसिक स्वाधीनता
३. अनुभूति से अलगाव, तटस्थता अथवा निर्व्यक्तिकता ।

काव्य का स्वरूप एवं नया चिंतन :

काव्य चिन्तक के रूप में अज्ञेय इलियट से सर्वाधिक प्रभावित हैं, फिर भी छायावाद के बाद के काव्य चिन्तकों में उल्लेखनीय मौलिक चिन्तक हैं । इलियट ने कहा था कि 'कविता भावों का उन्मोचन नहीं, बल्कि भावों से मुक्ति है, वह व्यक्तित्व की अभिव्यंजना नहीं, बल्कि व्यक्तित्त्व से मोक्ष है।'32 अज्ञेय ने भी कहा है कि, 'वास्तव में, काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है, जिसमें विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनाएं चमत्कारिक योग में युक्त होती हैं । काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं, एक माध्यम की अभिव्यक्ति है।'33 इसीलिए नूतनता काव्य एवं कलाओं का प्राण तत्त्व है, क्योंकि इसी से चमत्कार प्रवणता आती है । अज्ञेय का कथन है - 'कवि का कार्य नये अनुभवों की, नये भावों की खोज नहीं है, प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ही ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना जो उन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी है । वह नयी धातुओं का शोधक नहीं है, हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग ढालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।'34 किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अज्ञेय कलावस्तु के निर्माण में आयास का कोई महत्त्व नहीं स्वीकार करते । अज्ञेय का केवल इतना ही कहना है कि 'निस्सन्देह कवि कर्म का बहुत बड़ा अंश चेष्टित है, आयासपूर्वक सिद्ध होने वाला है..... छोटे कवि में दोष यही होता है कि जहाँ परिश्रम आवश्यक है, वहाँ पर प्रतिभा पर निर्भर करता है और जहाँ प्रतिभा का क्षेत्र है, वहाँ वह आयासपूर्वक तीव्रता लाता है।' दरअसल यह आयासमयता कवि के निर्वैयक्तिकता के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है क्योंकि 'कला के भाव व्यक्तित्त्व से परे होते है, निर्वैयक्तिक होते हैं और कवि इन निर्वैयक्तिकता भावों का ग्रहण और आयासहीन अभिव्यंजना तभी कर सकता है जब वह व्यक्तित्त्व की परिधि से बाहर निकलकर एक महानतर अस्तित्व के प्रति अपने को समर्पित कर सके ।'35अज्ञेय के लिए रचनाकार इसी अर्थ में 'द्रष्टा' या 'दाता' होता है । अनुभूति को सम्प्रेष्य अथवा अन्य ग्रह बनाकर उसे साधारण या सामान्य संवेदनीय बनाकर ही कृतिकार अपनी अनुभूति से अपने को अलग कर सकता है और इसी अवस्था में 'वह देख पाता है कि वह अनुभूति देय भी है या नहीं, साधारण भी हो सकती है या नहीं । इसी प्रकार तो वह द्रष्टा है।'36 और उसी के बल पर 'वह भावक अथवा ग्राहक की दया और करुणा की क्षमता बढ़ाता है, समाज को अंतः समृद्धि प्रदान करता है।'37 'जहाँ तक परम्परा का प्रश्न अज्ञेय ने भारतीय काव्य चिन्तन में वहीं किया, जो पश्चिम में इलियट ने किया। इलियट ने परम्परा को नया अर्थ दिया, तो अज्ञेय ने स्वीकार किया कि 'कभी कभी साहित्यकार का गौरव, उसकी रचना का महत्त्व इस बात में भी हो सकता है कि इसमें साहित्यकार के पूर्ववर्तियों की लम्बी परम्परा, उसके साहित्य की रूढ़ि, पुनः जी रही और मुखर हो रही है।'और इस परम्परा के प्रति जागरूकता का मुख्य उपकरण है - अतीत एवं वर्तमान का समन्वय । अज्ञेय का कथन है, 'इस जागरूकता का मुख्य उपकरण है - एक ऐतिहासिक चेतना अर्थात् जो कालानुक्रम में बीत गया है, उसके बीतेपन की नहीं, उसकी वर्तमानता की भी तीखी एवं चिरजाग्रत अनुभूति । साहित्यकार के लिए आवश्यक है कि साहित्य में और जीवन में 'असीत् का और 'अस्ति' का जो 'अचिर' हो गया है उसका और जो 'चिर' है । उसका और इन

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

दोनों परस्परता, अन्योन्याश्रता का ज्ञान उसमें बना रहे।'38 अज्ञेय का विचार है कि कोई भी कलावस्तु चाहे कितनी ही नयी क्यों न हो, अपने आप 'घटित हो गई नहीं होती । वह अपने पूर्ववर्ती तमाम कलावस्तुओं की परम्परा के साथ घटित हुई है । अज्ञेय के अनुसार, 'यह मानना पड़ता है कि प्रत्येक नवीन रचना के आते ही, पूर्ववर्ती परम्परा के साथ उसके सम्बन्ध, उसके परस्पर अनुपात ओर सापेक्ष्य मूल्य अथवा महत्त्व का फिर से अंकन हो जाता है । इस दृष्टि से 'प्राचीन और नवीन' 'रूढ़ि और मौलिक', 'परम्परा' और 'प्रतिभा' में एक नया तारतम्य स्थापित हो जाता है । नया साहित्यकार अतीत द्वारा, रूढ़ि द्वारा उतना ही नियमित होता है जितना वह स्वयं उसे परिवर्तित परिष्कृत करता है।'39

इस प्रकार अज्ञेय कवि की काव्य एवं सृजनधर्मिता के लिए अतीत एवं वर्तमान के संगठन को दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं क्योंकि इससे एक तो परम्परा की रक्षा होती है, दूसरे रचनाकार की निर्वैयक्तिकता' भी घटित होती है क्योंकि अपने वर्तमान के विलय का ही दूसरा नाम 'अहं का विलयन' भी है, आत्मदान भी यही है । इसके लिए अज्ञेय काव्यगत यथार्थ में कल्पना के योगदान को आवश्यक मानते हैं । अज्ञेय का कथन है, 'पर स्थूल यथार्थ कला का यथार्थ नहीं । यानी कि वही मात्र याकि उतना मात्र कला का यथार्थ नहीं है । कला में वही यथार्थ है, जिससे संबद्ध, संपृक्त हुआ जा सके - सम्बद्ध यथार्थ ही कला का यथार्थ है इसलिए चेतना द्वारा नियंत्रित और शोधित ऐन्द्रियबोध आवश्यक हो जाता है । न स्थूल यथार्थ अपने-आप में यथेष्ट होता है, न ऐन्द्रियबोध अपने आप में पर्याप्त आधार, कल्पना आवश्यक हो जाती है । इस प्रकार हम इस विरोधाभास तक पहुँचते हैं कि कला का यथार्थ बिना कल्पना की सहायता के प्राप्त नहीं हो सकता।40

सम्प्रेषण एवं साधारणीकरण:

अज्ञेय साधारणीकरण और सम्प्रेषण पर विचार करते समय एक ओर इलियट, रिचर्ड्स से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर एडलर तथा यंग से । अज्ञेय साहित्य एवं कला को आत्मदान मानते हैं, इसीलिए उनके यहाँ सम्प्रेषण इस इस रूप में दिखाई देता है - कलाकार निरन्तर अपने व्यक्तिगत मन को, अपने तात्कालिक, अधिक क्षणिक अस्तित्व को एक महानतर मन में और एक विशालतर अस्तित्व के ऊपर निछावर करता रहता है । अपने निजी व्यक्तित्व को एक वृहत्तर व्यक्तित्व के निर्माण के लिए मिटाता रहता है।'41 संस्कृत आचार्यों ने साधारणीकरण की अवस्था को सहृदय के सत्त्वोद्रेक जनित अवस्था के रूप में देखा है, जहाँ 'न ममेति न परस्येति' का बोध होता है । इलियट का भी निर्वैयक्तिकता का सिद्धान्त साधारणीकरण के महत्त्व को परिचित कराता है । अज्ञेय ने संप्रेषणीयता को ध्यान में रखकर ही कविता की परिभाषा दी 'कविता सागर के पार तक बढ़ा हुआ वह हाथ है जिसकी अचूक पकड़ अपनों को खींच लेती है।'42 अतएव नन्द दुलारे वाजपेयी का कहना सही नहीं है कि प्रयोगवादी कवि साधारणीकरण को महत्त्व नहीं देते जबकि अज्ञेय 'आत्मसत्य', 'जीवनानुभूति', 'व्यक्ति सत्य', 'आत्माभिव्यक्ति को मान्यता देते हुए भी प्रेषणीयता को साहित्य का मूल्य एवं साहित्यकार की कसौटी दोनों मानते हैं । अज्ञेय के अनुसार, 'प्रेषणीयता अब भी बुनियादी साहित्यिक मूल्य है और सम्प्रेषण साहितयकार का बुनियादी काम।'43 इतना ही नहीं अज्ञेय ने यह भी कहा है कि 'सम्प्रेषण की चुनौती स्वीकार किए बिना जो आगे बढ़ता है, वह कला का क्षेत्र नहीं है । आत्मशोध की दिशा में वह हो सकता है और वह आत्मशोध उच्चतर कला की भूमिका भी हो सकता है पर अपने आप में वह कला का प्रमाण नहीं।'44

अज्ञेय की साधारणीकरण सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यता है-

- 'यह मानना होगा कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारी अनुभूतियों का क्षेत्र भी विकसित होता गया और अनुभूतियों को व्यक्त करने के उपकरण भी विकसित होते गए हैं। यह कहा जा सकता है कि हमारे मूल राग - विराग नहीं बदले - प्रेम अब भी प्रेम है, घृणा अब भी घृणा, यह साधारणतया स्वीकार किया जा सकता है । पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ बदल गई हैं और कवि का क्षेत्र रागात्मक सम्बन्धों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि-कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है।'45
- 'लेकिन जैसे-जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है - वैसे-वैसे हमारे इससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने की प्रणालियाँ भी बदलती हैं और अगर नहीं बदलतीं तो इस बाह्य वास्तविकता से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है । कहना होगा जो आलोचक इस परिवर्तन को नहीं समझ पा रहे, वे इस वास्तविकता से टूट गए हैं जो आज की वास्तविकता है । इससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ने में असमर्थ वे उसे केवल बाह्य वास्तविकता मानते हैं, जबकि हम उससे वैसा सम्बन्ध स्थापित करके उसे आन्तरिक सत्य बना लेते हैं और उस विपर्यास से साधारणीकरण की नयी समस्याएँ आरम्भ होती हैं।'46
- 'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब इस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है । इस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता । कवि तब इस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः राग का संचार हो, पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो । साधारणीकरण का यही अर्थ है ।'47
- 'कवि नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नयी रचना है। इसे नयी कविता का कवि नहीं भूलता। साधारणीकरण का आग्रह भी उसका कम नहीं है ।

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

बल्कि यह देखकर कि आज साधारणीकरण अधिक कठिन है, वह अपने कर्त्तव्य के प्रति अधिक सजग है।'48

- 'साधारण का साधारण वर्णन कविता नहीं है, कविता तभी होती है, जब साधारण पहले निजी होता है और फिर व्यक्ति में से छनकर साधारण होता है ।'49
- 'जो कवि किसी एक क्षेत्र का सीमित (तथ्य नहीं, सत्य, अर्थात् उस सीमित क्षेत्र में जिस तथ्य से रागात्मक सम्बन्ध है वह इसी क्षेत्र में नहीं, इससे बाहर अभिव्यकत करना चाहता है, उसके सामने बड़ी समस्या है । या तो वह प्रयत्न ही छोड़ दे, सीमित सत्य को सीमित क्षेत्र में सीमित मुहावरे के माध्यम से अभिव्यक्त करे - यानी साधारणीकरण तो करे पर साधारण का क्षेत्र संकुचित कर दे - अर्थात् एक अन्तर्विरोध का आश्रय ले; या फिर वह वृहत्तर क्षेत्र तक पहुँचने का आग्रह न छोड़े और इसलिए एक क्षेत्र के मुहावरे से बँधा न रहकर उसके बाहर जाकर राह खोजने का जोखिम उठाये । इस प्रकार वह साधारणीकरण के लिए एक संकुचित क्षेत्र का साधारण मुहावरा छोड़ने को बाध्य होगा।'50
- 'साधारणीकरण और कम्युनिकेशन (सम्प्रेषण) की समस्या है ... सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके । भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है. इसलिए कि वह 'व्यक्ति सत्य' के 'व्यापक रूप' बनानेका सनातन उत्तरदायित्व अब भी निबाहना चाहता है, पर देखता है कि साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियाँ, जीवन के ज्वालामुखी के बढ़कर जाते हुए लावा से ही भरकर और जमकर रूद्ध हो गई हैं, प्राण संचार का भाग उनमें नहीं है।51
- अतएव अज्ञेय के लिए सम्प्रेषण इलियट की ही तरह आत्मोत्सर्ग, आत्मदान का सुख है, जो 'अपनी सिद्धिया पा लेने का, समाज को उसके बीच रहे होने का प्रतिदान दे देने का सुख' है । 'व्यक्ति सत्य' को 'समष्टि सत्य' बना देना कवि कर्म का दायित्व है। इसीलिए अज्ञेय ने कहा है, 'जो व्यक्ति का अनुभूत सत्य है उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता पहुँचाया जाए - यही पहली सामस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है ।'52

काव्य भाषा :

- अज्ञेय ने कवि को भाषा के 'चिरयात्री' कहकर भाषा के प्रति अपनी सजगता का संकेत दिया है । अज्ञेय शब्द में नवीन अर्थ भरने, उसे संस्कारित करने एवं नवीन अभिव्यक्ति के नये शब्दों की तलाश को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । वे 'मौन' में भी अर्थवृद्धि की शक्ति स्वीकार करते हैं । आनन्द प्रकाश दीक्षित का कथन है कि 'नए अर्थ को भरने या भाषा को संस्कार देने के लिए वे इस बात को जरूरी नहीं मानते कि 'अगुरू-धूप के धुएं से गंधयुक्त भाषा' लिखी जाए। न ही वे इस पक्ष में हैं कि यथार्थ के नाम पर 'बाजार की चरपरी या नाली की सड़ी गंधों से गंध गाती भाषा' का प्रयोग किया जाए । उन्हें चाहिए 'ताजा चिरी हुई लकड़ी की गंध जिसमें मिले, ऐसी भाषा'।53 शब्द की सार्थकता अज्ञेय के लिए महत्त्वपूर्ण है -
- मैं एक ही शब्द
- ठीक बैठा कि
- हो जाएगा वारा न्यारा
- (अन्तरा, पृष्ठ ७८)

अज्ञेय की काव्य भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित मान्यता

- 'कवि शब्दों का न केवल भरपूर सार्थक प्रयोग करता है, बल्कि कभी-कभी शब्दों या वर्णों का उपयोग न करके ही अर्थ की वृद्धि करता है - यही भाषा का श्रेष्ठ कलात्मक उपयोग है - जिसमें न केवल शब्दों के निहित और संभाव्य अर्थों का पूरा उपयोग किया जाता है बल्कि उन अर्थों का भी जो कि शब्दों के बीच के शब्दहीन अन्तराल में भरे जा सकते हैं। मैंने जब कहा 'केवल सही शब्द मिल जाएं' तो उसका यही आशय है। सही शब्द वे ही हैं जो उनके बीच के अंतराल का सबसे अधिक उपयोग करें - अंतराल के उस मौन द्वारा भी अर्थवत्ता का पूरा ऐश्वर्य संप्रेषित कर सकें। इतना ही क्यों, पूर्व की एक परम्परा के उत्तराधिकारी के नाते मैं यहाँ तक कह सकता है कि कविता भाषा में नहीं होती, वह शब्दों में भी नहीं होती, कविता शब्दों के बीच की नीरवताओं में होती है और कवि सहज बोध से जानता है कि उससे दूसरे तक पहुँचा जा सकता है; उससे संलाप की स्थिति पाई जा सकती है, क्योंकि वह जानता है कि मौन के द्वारा भी संप्रेषण हो सकता है।54
- कविता शब्द में होती है, विचार भाषा में होता है । वे विचार से आरम्भ करते हैं इसलिए वे भाषा से आरम्भ करते हैं विचारों का संप्रेषण गद्य में भी हो सकता है, इसलिए अपने विचार को काव्यत्व ओढ़ाने के लिए भाषा को कुछ ओढ़ाते हैं, उसे कसते हैं, उसे रंगत देते हैं : हर हालत में भाषा में कुछ जोड़ते हैं; भाषा उनके लिए पहले से ही दी हुई चीज होती है और अन्त तक दी हुई चीज बनी रह जाती है । पर कविता जोड़कर नहीं बनती, वह रची जाती है : उसका प्रतिज्ञात या 'गिवन' भाषा नहीं, केवल शब्द है । और कवि शब्द में शब्द नहीं जोडता, शब्दों के सान्निध्य मात्र से नए अर्थ रचता है, अर्थों, भावों, ध्वनियों, संस्कारों, रूपाकारों की

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अनेक गूंजें, अनुगूंजें उत्पन्न करता है; ध्वन्यर्थों का एक पूरा संसार रच देता है।55

- 'आत्यंतिक या स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला कुछ भी नहीं है। शब्द का आत्यंतिक या अपौरुषेय अर्थ नहीं है : अर्थ वही और उतना ही है जितना हम उसे देते हैं, बल्कि देने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं । ... इतना ही नहीं, हमने जो मान लिया है उस पर भी बराबर कायम नहीं रहते, अर्थ थोड़ा उन्नीस-बीस होता ही रहता है और फिर ये ऊनार्थ और अध्यर्थ शब्द का संस्कार या इतिहास बनकर उसमें एक और नया अर्थ जोड देते हैं।56
- 'सही शब्द पहचानना तो काफी नहीं है, सही शब्द ढालना, उच्छृत करना और करते रह जाना ही तो कवि पद है।'57
- 'नंगी यथार्थता तक पहुँचने के लिए नंगा शब्द चाहिए । 'संक्रामक और बहुस्तरीय भाषा को छोड़कर आक्रामक मगर इकहरी भाषा के अंगीकार या वरण को वे शब्द का व्याभिचार मात्र मानते हैं, कवि की शक्ति का और साथ ही शब्द की शक्ति का भी अपव्यय मानते हैं। मानते हैं कि ऐसा जानपूछकर किसी इष्ट उद्देश्य के लिए नहीं होता । केवल तब ऐसा होता है जब भाषा सध नहीं पाती. आती ही नहीं।58
- अतएव अज्ञेय को न तो भाषा की संकरता प्रिय है और न ही संस्कारहीन भाषा । उनकी दृढ़ मान्यता है कि यथार्थ के पहचान के नाम पर नंगी शब्दावली के प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि 'पहचान नंगी होती, सहज होती, सही होती है, नई होती है, धनी होती है, गहरी होती है, विविक्त होती है, असंपृक्त होती है, नीराग (या प्रगाढ़ रागबद्ध) होती है। ये ही सब विश्लेषण उस शब्द के होंगें । 'जो हमारे साध्य, काम्य या श्लाध्य होंगे और यथार्थ की पहचान हमारे साधन होंगे।'59

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना के नये वैचारिक सरोकार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 2003. पृ. 64.
2. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तारसप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1943. पृ. 278.
3. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तारसप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1943. पृ. 278.
4. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तारसप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1943. पृ. 279.
5. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आधुनिक साहित्य: एक परिदृश्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1981. पृ. 119.
6. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु: परिस्थिति और साहित्यकार. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 51.
7. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु: कला का स्वभाव और उद्देश्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 23.
8. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 267.
9. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 27.
10. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु: कला का स्वभाव और उद्देश्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 277.
11. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 27.
12. कुमार केसरी. अज्ञेय, एडलर और लिविस. दृष्टिकोण. 1952 जून; पृ. 13.
13. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 28.
14. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 28.
15. इलियट थॉमस स्टर्न्स. दि सेक्रेड वुड. लन्दन: मेथुएन; 1920. पृ. 53.
16. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 29.
17. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 29.
18. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तीसरा सप्तक: भूमिका. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1959. पृ. 17.
19. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तीसरा सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1959. पृ. 28.
20. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरण. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1965. पृ. 11.
21. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आलवाल. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 10.
22. तिवारी विश्वनाथ प्रसाद, सम्पादक. अज्ञेय. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी; 1988. पृ. 2.
23. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 9-10.
24. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 9-10.
25. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 12.
26. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 135.

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

27. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरा. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1955. पृ. 6.
28. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरा. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1955. पृ. 5.
29. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 136.
30. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 37.
31. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 38.
32. पालीवाल कृष्णदत्त. हिन्दी आलोचना के नये वैचारिक सरोकार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन; 2003. पृ. 70.
33. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 39.
34. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 39.
35. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 39.
36. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आलवाल. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 241.
37. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आलवाल. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 242.
38. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 39.
39. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 32.
40. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 27.
41. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. त्रिशंकु. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1945. पृ. 36.
42. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरा. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1955. पृ. 15.
43. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. हिन्दी साहित्य: आधुनिक परिदृश्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1981. पृ. 24.
44. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. लिखि कागद कोरे. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1997. पृ. 72.
45. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. दूसरा सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1951. पृ. 9.
46. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. दूसरा सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1951. पृ. 9-10.
47. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. दूसरा सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1951. पृ. 12.
48. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. दूसरा सप्तक. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1951. पृ. 12.
49. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आत्मनेपद. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1960. पृ. 42.
50. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. हिन्दी साहित्य: आधुनिक परिदृश्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1981. पृ. 201.
51. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. तारसप्तक: अज्ञेय का वक्तव्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1943. पृ. 275.
52. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आत्मनेपद. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1960. पृ. 37.
53. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. काव्य विषयक धारणाएँ. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1961. पृ. 23.
54. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आलवाल. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 12.
55. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरा. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1955. पृ. 115-116.
56. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. आलवाल. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 160.
57. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 75.
58. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. अन्तरा. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1955. पृ. 73.
59. अज्ञेय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन. भवन्ती. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ; 1971. पृ. 22.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/